22

भारत में प्रशासनिक सुधार : प्रशासनिक सुधार आयोग की अनुशंसाएं

[ADMINISTRATIVE REFORMS IN INDIA : RECOMMENDATIONS OF THE ADMINISTRATIVE REFORMS COMMISSION]

प्रशासनिक सुधार से तात्पर्य प्रशासन में इस प्रकार के सुनियोजित परिवर्तन लाना है जिनसे यह अपनी क्षमताएं बढ़ा सके एवं सामाजिक लक्ष्यों की प्राप्ति की दिशा में अग्रसर हो सके। प्रशासनिक विकास की यह एक ऐसी प्रक्रिया है जो सुनियोजित एवं संगठित होने के साथ-साथ निरन्तरता एवं सृजनशीलता की अपेक्षा करती है।

आधुनिक काल में सभी राष्ट्र आर्थिक एवं सामाजिक परिवर्तन के परिवेश से गुजर रहे हैं। इस प्रक्रिया में इन राष्ट्रों के सामाजिक एवं आर्थिक लक्ष्य नवीन आवश्यकताओं के अनुसार तीव्र गति से परिवर्तित होते हैं। इन प्रगतिशील लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए प्रशासन की संरचना, प्रक्रिया एवं दर्शन आदि में अपेक्षित सुधार किया जाना आवश्यक है। प्रशासनिक परिवर्तन या सुधार की यह व्यवस्था आज विकसित एवं विकासशील दोनों ही प्रकार के राष्ट्रों में देखने को मिलती है, किन्तु भारत जैसे परम्परावादी समाज एवं प्रशासनाश्रित व्यवस्था के लिए यह विशेष महत्व रखती है। हमारे संविधान में वर्णित आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक स्वतन्त्रता एवं न्याय के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए लोक प्रशासन का अत्यधिक एवं विशिष्ट उत्तरदायित्व है। वस्तुतः भारत में आजकल प्रशासन में सुधार तीन कारणों से आवश्यक हो गया है :

(i) **राजनीतिक परिवर्तन**—भारत का प्रशासनिक ढांचा औपनिवेशिक राज के न्यस्त स्वार्थों की पूर्ति के लिए निर्मित किया गया था। ब्रिटिश युग में सरकारी शासन पद्धति का प्रमुख ध्येय कानून तथा शासन की व्यवस्था बनाए रखना था। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद होने वाले राजनीतिक परिवर्तन ने शासन पद्धति में भी परिवर्तन करना आवश्यक बना दिया, क्योंकि नवीन परिस्थितियों में पुरानी पद्धतियों से काम नहीं चल सकता था।

(ii) **पंचवर्षीय योजनाएं**—स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भारत सरकार ने पंचवर्षीय योजनाओं द्वारा भारत के आर्थिक-सामाजिक ढांचे में क्रान्तिकारी मौलिक परिवर्तन करने का निश्चय किया। इन योजनाओं को सफल बनाने के लिए भारत के प्रशासनिक ढांचे को बदलना और उसको पुनः संगठित करना अतीव आवश्यक हो गया।

(iii) **भ्रष्टाचार का निवारण**—स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद सार्वजनिक क्षेत्र में भ्रष्टाचार तथा अन्य बुराइयों में बड़ी वृद्धि हुई हैं। प्रशासनिक सुधार द्वारा इन्हें रोकने के उपाय खोजना आवश्यक है।

भारत में अंग्रेजी शासन काल में प्रशासनिक सुधार

अंग्रेजी शासन काल में सरकार वैधानिक परिवर्तनों को करने से पहले प्रायः देश की प्रशासनिक व्यवस्था के विभिन्न पहलुओं की जांच करने के लिए शाही आयोग नियुक्त किया करती थी। ये आयोग अपने क्षेत्र से सम्बद्ध समस्याओं की विस्तृत एवं गहरी जांच तथा छानबीन करने के बाद अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करते थे। ये आयोग प्रशासन की समस्याओं का अध्ययन करने के लिए भारत के विभिन्न प्रान्तों और प्रदेशों का दौरा

करते थे। इस युग में ब्रिटिश सरकार द्वारा नियुक्त किए जाने वाले प्रमुख आयोग थे : (i) ऐचिसन आयोग; (ii) ली आयोग; (iii) इस्लिंगटन आयोग; आदि।

ऐचिसन आयोग ने सिविल सर्विस का तीन बड़ी श्रेणियों—शाही सेवाएं, प्रान्तीय सेवाएं तथा अधीनस्थ सेवाएं—में बांटने की सिफारिश की। इस्लिंगटन आयोग ने कुछ सेवाओं में भर्ती और नियुक्ति का कार्य ब्रिटेन में भारतमन्त्री के अधिकार क्षेत्र से हटाकर भारत सरकार को सौंपने की सिफारिश की। ली आयोग ने उच्च सेवाओं में आवश्यक परिवर्तन के सुझाव दिए। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद युद्धोत्तर पुनर्निर्माण के कार्यक्रम को चलाने के लिए भारतीय प्रशासन में आवश्यक सुधारों हेतु सुझाव देने के लिए रिचर्ड टाटनहम की अध्यक्षता में एक समिति नियुक्त की गयी, किन्तु विभाजन की समस्या जटिल हो जाने के कारण इसके प्रतिवेदन पर कोई कार्यवाही नहीं की जा सकी।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद प्रशासनिक सुधार की समितियां और आयोग

स्वतन्त्रता के बाद भारत में संघीय शासन व्यवस्था लागू की गयी। इसके तथा विभाजन के परिणामस्वरूप प्रशासनिक सुधारों की आवश्यकता तीव्रता से अनुभव की गयी। अतः केन्द्र तथा राज्य सरकारें इस समय यह अनुभव कर रही थीं कि उन्हें नवीन राजनीतिक, सामाजिक व आर्थिक व्यवस्था को स्थापित करने और जनता की आकांक्षाओं तथा इच्छाओं को पूरा करने के लिए अपने प्रशासन में अनेक सुधार करने चाहिए। इन पर विचार करने के लिए अनेक समितियां गठित की गयीं। अब तक ऐसी लगभग 30 से अधिक समितियां बनायी जा चुकी हैं जिन्होंने केन्द्रीय सरकार के प्रशासन के विभिन्न अंगों में आवश्यक सुधार के सुझाव दिए। इनमें से कुछ प्रमुख समितियां व उनके प्रतिवेदन निम्नलिखित हैं :

1. **सचिवालय पुनर्गठन समिति या बाजपेयी समिति**—सन् 1947 में जब भारत का विभाजन होना निश्चित हो गया था तो इस समस्या पर उच्चस्तरीय विचार-विमर्श किया गया कि भारतीय लोक सेवा के बहुत-से अधिकारियों के पाकिस्तान तथा इंग्लैण्ड चले जाने के कारण रिक्त हुए स्थानों की पूर्ति किस प्रकार की जाए। अधिकारियों की कमी की समस्या पर गहन विचार करने हेतु जुलाई सन् 1947 में एक सचिवालय पुनर्गठन समिति की स्थापना की गयी। इस समिति ने उच्च अधिकारियों की कमी की पूर्ति करने के लिए अनेक सुझाव दिए तथा साथ ही ऐसी सिफारिशें भी कीं जिनसे उपलब्ध अधिकारियों की सेवाओं का अधिकतम एवं सम्भावित उपयोग किया जा सकता था।

2. **मितव्ययिता समिति**—सन् 1948 में भारत सरकार ने एक मितव्ययिता समिति नियुक्त की। इस समिति के अध्यक्ष देश के प्रमुख उद्योगपति कस्तूरभाई लालभाई थे। इस समिति ने केन्द्रीय सरकार के सन् 1938-39 से लेकर सन् 1948 तक के दशक में बढ़ते हुए असैनिक व्यय का विश्लेषण किया तथा प्रशासन में मितव्ययिता लाने एवं अनावश्यक व्ययों को समाप्त करने से सम्बन्धित महत्वपूर्ण सिफारिशें कीं।

3. **आयंगर समिति प्रतिवेदन**, 1949—सन् 1949 में भारत सरकार ने श्री. एन. गोपालस्वामी आयंगर को केन्द्रीय सरकार के पुनर्गठन का अध्ययन करने के लिए एक-सदस्यीय आयोग के रूप में नियुक्त किया। श्री आयंगर ने सरकारी तन्त्र के पुनर्गठन पर दिए गए अपने प्रतिवेदन में केन्द्रीय सचिवालय के संगठनात्मक एवं प्रक्रियात्मक परिवर्तन के सम्बन्ध में विस्तृत विवेचन के साथ सिफारिशें प्रस्तुत कीं। उनकी एक प्रमुख सिफारिश यह थी कि केन्द्रीय मन्त्रालयों को चार ब्यूरो में पुनर्गठित किया जाए। जिन ब्यूरो की संरचना की यहां सिफारिश की गयी थी, वे थे : (i) प्राकृतिक साधन एवं कृषि ब्यूरो; (ii) उद्योग एवं व्यापार ब्यूरो; (iii) यातायात एवं संचार ब्यूरो, तथा (iv) श्रम और सामाजिक सेवा ब्यूरो, किन्तु सरकार ने इस सिफारिश को स्वीकार नहीं किया।

4. **गोरवाला रिपोर्ट**, 1951—सन् 1951 में योजना आयोग की स्थापना के बाद इस बात पर विचार करने की आवश्यकता महसूस की गयी कि नियोजित विकास के संदर्भ में तत्कालीन प्रशासन तथा इसकी प्रणालियों की उपयुक्तता की जांच की जाए। ए. डी. गोरवाला एक अवकाश प्राप्त सिविल अधिकारी थे, जिन्होंने योजना आयोग के लिए एक गैर-पदाधिकारी के रूप में प्रतिवेदन तैयार करने हेतु अपनी सहमति प्रकट की। मार्च 1951 से उन्होंने कार्य प्रारंभ किया और 30 अप्रैल को भारतीय प्रशासन का अध्ययन कर 70 पृष्ठों वाला एक प्रतिवेदन '**लोक प्रशासन पर प्रतिवेदन**' सरकार के सम्मुख प्रस्तुत किया। यह प्रतिवेदन 9 अध्यायों

में विभक्त है। पहला अध्याय प्रस्तावना है। इसमें गोरवाला ने कहा है कि "निकृष्ट सरकार तथा उत्कृष्ट प्रशासन अधिक से अधिक एक अस्थायी सम्मिलन होता है।" सरकार की सुदृढ़ता और कमजोरी जनता और उसके नेताओं के चरित्र तथा प्रचलित राजनीतिक व्यवस्था की प्रकृति पर निर्भर करती है। कोई भी लोकतन्त्र एक स्पष्ट, कुशल तथा निष्पक्ष प्रशासन के अभाव में सफल नियोजन नहीं कर सकता। रिपोर्ट के दूसरे अध्याय में समस्या, प्रकृति और उपागम (Problem, Nature and Approach) की चर्चा की गयी है। इसमें अत्यधिक सत्यनिष्ठा, अत्यधिक कार्यकुशलता तथा जन आवश्यकताओं के प्रति अत्यधिक उत्तरदायित्व पर समस्याओं के रूप में विचार किया गया है। समस्याओं के सर्वोत्तम उपागम के रूप में पांच तत्वों पर जोर दिया गया है—(i) नीतियों और कर्मचारियों के लिए प्राथमिकता; (ii) परोक्ष तथा प्रत्यक्ष सत्यनिष्ठा; (iii) परस्पर समझदारी; (iv) तीव्रतर गति, प्रभावकारिता और जवाबदेही; (v) अल्पकालीन व लम्बी अवधि का उचित प्रशिक्षण व उचित भर्ती के सम्बन्ध में योजना। तीसरे अध्याय में प्राथमिकताएं, चौथे अध्याय में सत्यनिष्ठा और ईमानदारी, पांचवें अध्याय में परस्पर समझ, छठे में सुधार तथा पुनर्गठन, सातवें में प्रशिक्षण, आठवें में भर्ती तथा नवें में प्रशासन, नियोजन एवं जनता की चर्चा की गयी है।

गोरवाला ने भारत में विद्यमान लोक प्रशासन की व्यवस्था और नौकरशाही ढांचे की मौलिक धारणाओं को बिना किसी प्रकार की क्षति पहुंचाए विद्यमान ढांचे में व्याप्त बुराइयों को दूर करने एवं उसे अधिक दृढ़ तथा सक्षम बनाने का सुझाव दिया। गोरवाला ने अपने प्रतिवेदन में निम्नलिखित सुझाव दिए हैं :

(i) **सर्वोत्तम महत्व की चीजों को प्राथमिकता** (Placing first things first)—गोरवाला के अनुसार जो चीजें सर्वोत्तम महत्व की हैं, उन्हें प्राथमिकता मिलनी चाहिए। गौण महत्व वाली चीजों को पीछे किया जाना चाहिए। कतिपय थोड़े-से निर्धारित लक्ष्यों की ओर ही प्रयत्न किया जाना चाहिए क्योंकि भारतीय प्रशासन में अच्छे साधनों और उपकरणों का अभाव है।

(ii) **परिणामों का मूल्यांकन** (Assessment of Results)—सरकारें अत्यधिक खर्च में इस आशा से लगी रहती हैं कि इससे कुछ निश्चित परिणाम मिलेंगे, परन्तु ऐसा हो नहीं पाता है। जब अत्यधिक मात्रा में खर्च की मंजूरी हो तो परीक्षण और मूल्यांकन कार्य के लिए किसी व्यवस्था (Machinery) का निर्माण भी किया जाना चाहिए, जो परिणामों का व्यय के परिप्रेक्ष्य में मूल्यांकन करे।

(iii) **ईमानदारी तथा सत्यनिष्ठा** (Integrity)—नीतियों को लागू करने वाले कार्यकर्ताओं में ईमानदारी और सत्यनिष्ठा होनी चाहिए। उनमें आज्ञापालन और नैतिक चरित्र का विकास होना चाहिए। गोरवाला प्रतिवेदन मन्त्रियों, विधायकों तथा प्रशासकों के विचलन को तीन मुख्य भागों में बांटता है—(i) भ्रष्टाचार, (ii) संरक्षण (Patronage)—जो जातिवाद, साम्प्रदायवाद, पक्षपात तथा भाई-भतीजावाद पर आधारित होता है, तथा (iii) प्रभाव। विचलन का रूप चाहे जो भी हो, इससे सरकारी नीति विकृत हो जाती है, प्रशासन कमजोर हो जाता है तथा जनता के विकास में कमी आती है।

(iv) **मन्त्रियों तथा वरिष्ठ पदाधिकारियों के बीच सम्बन्ध** (Relationship between Ministres and Senior Officers)—गोरवाला प्रतिवेदन के अनुसार मन्त्रियों को विभागीय वरिष्ठ अधिकारियों से सलाह लेनी चाहिए। मन्त्री और उसके विभाग के सिविल सेवक के बीच अच्छे सम्बन्ध पर ही कुशल प्रशासन को आधारित किया जा सकता है। एक सरकार को लोकप्रिय बनाता है तथा दूसरा प्रशासन को कार्यकुशल बनाता है।

(v) **विचलन का प्रतिकार** (The Remedy for Deviation)—मन्त्रियों, विधायकों और प्रशासकों में जो विचलन या पथभ्रष्टता देखने को मिलती है उसका एकमात्र प्रतिकार, प्रतिवेदन के अनुसार, यह होगा कि विधायकों में चरित्र बल, मन्त्रियों में उत्तरदायित्व की भावना तथा प्रशासकों के स्वभाव को उन्नत बनाया जाए। राजनीतिक दलों द्वारा अपने उम्मीदवारों के चयन में सावधानी रखनी चाहिए। उम्मीदवार ही विधायक या मन्त्री बनते हैं। अतः चुनाव ऐसे व्यक्तियों का किया जाना चाहिए जो चरित्रवान हों, जिनमें समस्याओं के संदर्भ में निष्पक्ष दृष्टिकोण अपनाने की योग्यता हो तथा जो गुण को आधार बनाकर तथ्यों का निर्णय कर सकें।

(vi) **नियोजन की अपेक्षाएं** (Requirements of Planning)—नियोजन के लिए गोरवाला प्रतिवेदन के अनुसार, उन्हीं तत्वों की जरूरत है जो साधारण प्रशासन के लिए आवश्यक माने गए हैं—(i) उचित रूप से भर्ती होनी चाहिए; (ii) उचित प्रशिक्षण की व्यवस्था रहनी चाहिए; तथा (iii) उचित आवंटन होना चाहिए।

नियोजन के सम्बन्ध में दो संकटों से बचाव करना चाहिए—(i) प्राप्त व्यक्ति और वित्त से अधिक का नियोजन नहीं करना चाहिए; तथा (ii) नियोजन को खण्डशः नहीं अपनाया जाना चाहिए।

गोरवाला प्रतिवेदन में उल्लेखित अन्य सिफारिशें निम्न प्रकार हैं—(1) नीति निर्माण और उसकी क्रियान्विति में स्पष्ट अन्तर करना, (2) नियुक्तियों के लिए चयन में मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का प्रयोग करना, (3) आर्थिक असैनिक सेवा की स्थापना करना, (4) अखिल भारतीय सेवा के कार्मिकों की अपने राज्य से इतर राज्य में नियुक्ति करना, (5) मन्त्रियों का उच्च असैनिक पदाधिकारियों से परामर्श करना, (6) लोक सेवा आयोग द्वारा आयोजित प्रतियोगिता परीक्षा में सामान्य प्रश्नपत्रों के लिए अधिक अंक निर्धारित करना, (7) भारतीय प्रशासनिक सेवा महाविद्यालय के संगठन में सुधार करना तथा पूरे समय के लिए प्राचार्य की नियुक्ति करना, (8) व्हिटले परिषद् की स्थापना करना, (9) अच्छे वेतनमान और उचित दण्ड व्यवस्था के माध्यम से प्रशासन में समुचित अनुशासन की स्थापना करना, (10) वरिष्ठ अधिकारियों को अधिक मात्रा में निरीक्षण एवं निदेशन तथा कनिष्ठ अधिकारियों को अधिक उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य दिया जाना, (11) मन्त्रिमण्डल की कार्य-प्रक्रिया में सुधार करना, (12) नियोजन में उत्तरदायित्व की विकेन्द्रीकृत व्यवस्था को स्थापित करना, (13) वित्त मन्त्रालय के अत्यधिक नियन्त्रण से प्रशासनिक मन्त्रालयों को अधिक स्वतन्त्रता प्रदान करना, (14) सचिवालय द्वारा विभागाध्यक्षों के कार्यों में हस्तक्षेप नहीं करना, और (15) संसदीय नियन्त्रण का लोक लेखा और प्राक्कलन समितियों के माध्यम से उचित संगठन करना।

डॉ. पी. डी. शर्मा के शब्दों में, "श्री गोरवाला ने केन्द्र एवं राज्य दोनों स्तरों पर मौलिक प्रशासनिक सुधारों के लिए योजनाबद्ध सुझाव दिए, किन्तु भारत सरकार ने इन्हें क्रियान्वित करने में अधिक रुचि नहीं दिखायी।"

5. **सरकारी उद्यमों के सफल संचालन के सम्बन्ध में गोरवाला प्रतिवेदन**, 1951—गोरवाला ने सन् 1951 में सरकारी उद्यमों के सम्बन्ध में भी एक प्रतिवेदन प्रस्तुत किया था। यह उनका दूसरा प्रतिवेदन था। इस प्रतिवेदन की महत्वपूर्ण बातें निम्नलिखित हैं :

(1) **सरकारी उद्यमों और निजी उद्यमों की तुलना**—इस प्रतिवेदन में गोरवाला ने सरकारी और निजी उद्यमों में तुलना की। उनके अनुसार (i) निजी उद्यमों में लाभ का ख्याल किया जाता है। यद्यपि सरकारी उद्यम भी लाभ के लिये संचालित किए जा सकते हैं, परन्तु सरकारी कार्यों का मुख्य ध्येय जन सेवा (Public Service) तथा जन सुरक्षा (Public Security) होता है। (ii) लोक उद्यमों में निदेशन और प्रबन्ध कार्य अवैयक्तिक रूप से होता है, लेकिन निजी उद्यम अवैयक्तिक नहीं होते, वे मालिकों के नाम से संचालित होते हैं। निजी उद्यमों में जोखिम विशेष अर्थ रखता है जबकि लोक उद्यमों के साथ ऐसी बात नहीं होती। (iii) निजी उद्यमों के निदेशक पर्याप्त मात्रा में स्वायत्त होते हैं। वे पूर्ण रूप से अपने विवेकाधिकार का प्रयोग करते हैं। (iv) एक निजी उद्यम जिन वस्तुओं का निर्माण करता है उनके सम्बन्ध में उसे आलोचना का भागी बनना पड़ता है। वस्तुएं उस उद्यम की मानी जाती हैं। दूसरी तरफ लोक उद्यम की वस्तुएं समूचे राष्ट्र की और राष्ट्र के लिए मानी जाती हैं।

(2) **सफल संचालन के उपाय**—गोरवाला ने उद्यमों के सफल संचालन के उपाय बतलाये हैं। गोरवाला के अनुसार निदेशन और प्रबन्ध की उचित व्यवस्था होनी चाहिए। सभी स्तरों पर सुयोग्य कर्मचारी होने चाहिए तथा स्वस्थ परम्पराओं, उपयुक्त प्रणालियों और नवीन युक्तियों को अपनाया जाना चाहिए। गोरवाला ने इन सारी बातों पर विचार करते हुए प्रवन्ध के दो रूप (Two forms of management) बताए हैं। एक रूप में प्रबन्ध किसी उपयुक्त निजी अभिकरण (Private Agency) के हाथ में जाना चाहिए जो निम्नलिखित स्थितियों में काम करेंगी—(i) जहां किसी वर्तमान निजी उद्योग के विस्तार मात्र से सम्बन्ध हों; (ii) जहां राज्य कुछ खास कारणों से किसी निजी प्रबन्ध को अस्थायी तौर पर हाथ में लेने को बाध्य हो जाए; तथा जहां विशेष अपरिहार्यता में राज्य यह महसूस करे कि किसी प्रतिष्ठित और महत्वपूर्ण निजी अभिकरण को पूंजी देना जरूरी है ताकि वह उद्योग का प्रबंध कर सके।

गोरवाला प्रतिवेदन के अनुसार दूसरा प्रबन्ध वह प्रबन्ध है जो विभागीय अभिकरण को सुपुर्द किया जाता है। कुछ परिस्थितियां ऐसी होती हैं जिनमें यह उपयुक्त होता है, परन्तु यह स्वायत्तता सिद्धान्त का स्पष्ट निषेध है।

लोक प्रशासन के विशेषज्ञों का विचार है कि गोरवाला के विचार भारतीय लोक प्रशासन के संबंध में सर्वोत्कृष्ट साहित्य (Finest Literature on Indian Public Administration) है। गोरवाला रिपोर्ट ने मंत्रियों और सरकारी पदाधिकारियों की इस रूप में आलोचना की कि नेहरू मंत्रिमण्डल तथा संसद को यह ग्रहणीय नहीं हो सका।

6. **गोपालस्वामी प्रतिवेदन**, 1952—सन् 1952 में आर. ए. गोपालस्वामी ने 'सरकारी तन्त्र की कार्यकुशलता की अभिवृद्धि' पर अपना प्रतिवेदन सरकार के विचारार्थ प्रस्तुत किया। इस प्रतिवेदन में श्री गोपालस्वामी आयंगर ने केन्द्रीय सरकार के सम्पूर्ण प्रशासनिक संगठन तथा कार्य-प्रणाली की आलोचनात्मक समीक्षा की।

7. **पॉल एच. एपिलबी प्रतिवेदन**—सितम्बर सन् 1952 में सरकार ने भारत में प्रशासनिक सुधारों पर विचार करने के लिए पॉल एपिलबी की नियुक्ति की। सन् 1952 में भारतीय लोक प्रशासन का अध्ययन करने के लिए भारत सरकार के निमन्त्रण पर वे भारत आए। उन्होंने विभिन्न सरकारी दस्तावेजों और पत्रों का अध्ययन किया, सैकड़ों अधिकारियों और मन्त्रियों से समालाप किया, भारत में 9,000 मील का दौरा किया तथा दिल्ली से बाहर दस राज्यों में भी भ्रमण किया। 15 जनवरी, सन् 1953 को एपिलबी ने 3,000 शब्दों का प्रतिवेदन '**भारत में लोक प्रशासन सर्वेक्षण का प्रतिवेदन**' सरकार को प्रस्तुत किया।

अपने प्रतिवेदन में एपिलबी ने यह विचार व्यक्त किया कि भारत विश्व के लगभग उन एक दर्जन राष्ट्रों में से एक है, जहां का लोक प्रशासन पर्याप्त रूप से संगठित एवं विकसित है।[1] अपने इस प्रतिवेदन में एपिलबी ने बारह प्रमुख सिफारिशें प्रस्तुत की थीं जिनका सारांश इस प्रकार है—(i) प्रतिवेदन की प्रारम्भिक पंक्तियों में एपिलबी ने भारत की एकता और विभिन्नता से सम्बन्धित प्रश्नों को उठाया और इस सन्दर्भ में अपना यह मत व्यक्त किया कि भारतीय परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए भारतीय संघ में राज्यों को अधिक स्वतन्त्रता देना उचित नहीं होगा। (ii) भारतीय लोक सेवाओं के सम्बन्ध में एपिलबी का मत था कि समस्त सेवाओं को एक विस्तृत सेवा की सामान्य सदस्यता में संगठित कर दिया जाना चाहिए। (iii) उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि भारत में लोक प्रशासन के विधिवत् अध्ययन एवं अनुसंधान को प्रोत्साहित करने के लिए तथा सरकारी कर्मचारियों को उनके सेवा काल के दौरान समुचित प्रशिक्षण प्रदान करने के लिए एक भारतीय लोक प्रशासन संस्थान की स्थापना की जानी चाहिए। नयी दिल्ली स्थित 'इण्डियन इन्स्टीट्यूट ऑफ पब्लिक ऐडमिनिस्ट्रेशन' इस अनुशंसा की क्रियान्विति का परिणाम है। (iv) सरकारी प्रशासनिक तन्त्र में संगठन एवं प्रक्रियात्मक समस्याओं के अध्ययन एवं इस क्षेत्र में आवश्यक सुधार हेतु केन्द्रीय सरकार में एक '**संगठनात्मक एवं प्रक्रिया**' इकाई की स्थापना की जानी चाहिए। भारत सरकार ने इस महत्वपूर्ण सिफारिश को तुरन्त क्रियान्वित किया और सन् 1954 में केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल सचिवालय में एक 'संगठन एवं प्रक्रिया सम्भाग' गठित किया गया। (v) उनका सुझाव था कि योजना आयोग का कार्य केवल योजना बनाने तक सीमित रहना चाहिए। योजनाओं को क्रियान्वित करने का उत्तरदायित्व इसका नहीं होना चाहिए। भारत सरकार ने एपिलबी की इस सिफारिश को स्वीकार कर योजना आयोग को समस्त कार्यकारी उत्तरदायित्व से मुक्त रखा है। (vi) भारतीय सरकारी निगम व्यवस्था के सम्बन्ध में एपिलबी का मत था कि उनकी सरकारी प्रकृति बनी रहनी चाहिए तथा उन्हें बहुत स्वाधीनता देना अनुपयुक्त होगा। (vii) भारतीय प्रशासन में सूत्र तथा स्टाफ में स्पष्ट अन्तर न होने के कारण प्रशासन में गड़बड़ी का एक बड़ा कारण माना था, इसे दूर करने पर बल दिया। (viii) एपिलबी ने केन्द्रीय सचिवालय के संगठन को दोषपूर्ण पाया। उसके अनुसार वरिष्ठ पदाधिकारियों तथा अधिसंख्यक अराजपत्रित कर्मचारियों के बीच मध्यवर्गीय कर्मचारियों की नितान्त आवश्यकता थी। उन्होंने विचार किया कि प्रत्येक विभाग में मध्यवर्गीय अधिकारियों की बहाली की जाए जो निर्णय-प्रक्रिया में महत्वपूर्ण भाग अदा करें। (ix) एपिलबी ने सरकारी आय के सम्बन्ध में भी अपना विचार दिया था। उनका कहना था कि आय में वृद्धि करने के लिए सरकार को सभी राज्यों में कृषि आय कर लगाना चाहिए। (x) विकास कार्यक्रमों के सम्बन्ध में एपिलबी ने कर्मचारियों की परिचालन प्रभावकारिता (Operational Effectiveness) पर बल दिया। प्रतिवेदन के अनुसार कर्मचारियों की परिचालन प्रभावकारिता में वृद्धि करने के लिए उनकी

1 "It is my general Judgement that the Government of India is a highly advanced one."

स्थिति (Status) तथा उनकी जवाबदेही (Responsibility) को समुन्नत बनाया जाना चाहिए। इसके लिए एपिलबी के मत में प्रक्रियाओं (Procedures) को सरल करना होगा जिससे अत्यधिक प्रतिनिर्देश (Cross Reference) में कमी हो सके तथा विभिन्न मन्त्रालयों और विभागों की सहमति लेना जरूरी न हो। (xi) एपिलबी ने कर्मचारियों के प्रशिक्षण पर जोर दिया। वे प्रशिक्षण कार्यक्रमों (Training Programmes) को प्रारम्भ करने के समर्थक थे। (xii) उन्होंने विचार दिया कि भारत में प्रशासनिक ढांचे में परिवर्तन सावधानी के साथ किया जाना चाहिए। उन्होंने पिरामिडी प्रशासनिक संरचना में विकेन्द्रीकरण का समर्थन किया। उन्होंने प्रशासन में मध्यवर्ती और दरमियानी कार्यकर्ताओं की स्थापना (Creation of middle level functionaries) का विचार दिया।

सन् 1953 के पश्चात् एपिलबी दो बार फिर भारत पधारे तथा सन् 1956 में 59 पृष्ठों का द्वितीय प्रतिवेदन '**भारतीय प्रशासन व्यवस्था की पुनः परीक्षा—सरकार के औद्योगिक और वाणिज्य उपक्रमों के सन्दर्भ में**' प्रस्तुत किया। इस बार उन्होंने लोक उद्यमों की समस्याओं पर अधिक गहनता से अध्ययन किया। अपने प्रथम प्रतिवेदन में एपिलबी ने यह सिफारिश की थी कि निगमों को अधिक स्वतन्त्रता नहीं दी जानी चाहिए तथा उनको सरकारी चरित्र प्रधान रखना उपयोगी होगा। अपनी दूसरी रिपोर्ट में उन्होंने अपने विचारों में संशोधन कर लोक निगमों की स्वायत्तता में वृद्धि के लिए जोरदार वकालत की। द्वितीय एपिलबी प्रतिवेदन के कतिपय अन्य सुझाव इस प्रकार हैं : (1) प्रशासनिक क्षेत्र में प्रत्याधिकृत का सिद्धान्त अपनाया जाना चाहिए; (2) नियन्त्रक महा-लेखापाल द्वारा प्रशासकीय कार्यों में कम हस्तक्षेप किया जाना चाहिए; उसका प्रतिवेदन छोटा एवं चयनात्मक होना चाहिए; (3) मन्त्रालयों में वित्तीय एवं बजट मामलों की योग्यता का विकास किया जाना चाहिए। यह कार्य वित्त अधिकारी की देखरेख में होना चाहिए; (4) संघीय सचिवालय में कार्यों को शीघ्र निपटाने के लिए अधिकारी की नियुक्ति की जानी चाहिए; (5) वित्त मन्त्रालय योग्यता प्राप्त अधिकारी द्वारा व्यय सचिव को कार्यों के शीघ्र निपटाने हेतु सहायता देनी चाहिए; (6) लोक सेवा आयोग द्वारा भर्ती के कार्यों को ठीक प्रकार से संचालित करने के लिए अधिक अमला दिया जाना चाहिए। इसकी नियुक्ति के लिए योग्य प्रत्याशी का रजिस्टर रखना चाहिए; (7) संसद द्वारा प्रगतिशील प्रशासन में केवल रचनात्मक और सकारात्मक उत्तरदायित्वों का निर्वाह करना चाहिए; (8) कम्पनी और निगमों के संचालक मण्डलों को प्रत्याधिकृत सिद्धान्तों के आधार पर कार्य करना चाहिए। मण्डल को मूल्यांकन और समन्वय के कार्य सम्पादित करने चाहिए; (9) लोक उपक्रमों से सम्बन्धित लेखा परीक्षा पद्धति में परिवर्तन किया जाना चाहिए, नियन्त्रक महा-लेखापाल के स्थान पर यह कार्य लोक उपक्रम द्वारा ही किया जाना चाहिए। (10) एपिलबी ने कहा कि भारतीय नौकरशाही अधीनस्थ कर्मचारियों की योग्यता का उपयोग नहीं करती। उनके निम्न शब्द उल्लेखनीय हैं : "यदि भारत नौकरशाही को छोटे कार्य क्षेत्र तक सीमित रखता है तो समूचा राष्ट्र ही छोटी उपलब्धियों तक सीमित रह जाएगा। अतः नौकरशाही का कार्यक्षेत्र बढ़ाया जाना चाहिए, नौकरशाही को भी अधीनस्थ कर्मचारियों की योग्यता से अधिकाधिक काम लेना चाहिए।" (11) उन्होंने हर बात में प्रक्रियाओं की दुहाई देने के सम्बन्ध में अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त की। उनके अनुसार कर्मचारियों में नेतृत्व और कल्पना शक्ति होनी चाहिए।

"इस प्रकार एपिलबी ने अपने इस प्रतिवेदन में भारत के केन्द्रीय प्रशासन की संगठनात्मक एवं समन्वयात्मक समस्याओं की ओर देश के प्रबुद्ध वर्ग का ध्यान आकर्षित किया, किन्तु इन सिफारिशों का क्रियान्वयन गत वर्षों में लगभग नहीं के बराबर रहा है।"

8. के. सन्थानम् समिति प्रतिवेदन—भ्रष्टाचार भारतीय प्रशासन का सबसे बड़ा दुर्भाग्य रहा है। सन् 1962 में सरकार ने भ्रष्टाचार को रोकने के लिए विद्यमान रोधकों की जांच करने और भ्रष्टाचार विरोधी कदमों को और अधिक दृढ़ बनाने के लिए आवश्यक उपाय सुझाने के लिए श्री के. सन्थानम् की अध्यक्षता में एक समिति की नियुक्ति की। सन् 1964 में इस समिति ने अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत किया। सन्थानम् समिति ने अपना विचार प्रकट करते हुए कहा कि यह सामान्य धारणा है कि बिना भ्रष्टाचार का रास्ता अपनाए किसी भी कार्य का होना अत्यन्त कठिन है। समिति के प्रतिवेदन में आगे कहा गया है कि भ्रष्टाचार उस समय समाप्त हो सकता है जब कोई खत्म करने के लिए तैयार हो तथा उसमें इस कार्य के लिए क्षमता हो। समिति ने भ्रष्टाचार को मिटाने के लिए अनेक सुझाव प्रस्तुत किए जिनमें से दो सुझाव अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। प्रथम,

केन्द्रीय सतर्कता आयोग की स्थापना और द्वितीय, मन्त्रियों के विरुद्ध भ्रष्टाचार के आरोप की जांच करने के लिए राष्ट्रीय नामिका की स्थापना करना।

समिति ने सतर्कता आयोग के सम्बन्ध में निम्नलिखित सुझाव दिए : (i) केन्द्रीय सतर्कता आयोग को अपने कार्यों के सम्पादन में सरकारी नियन्त्रण से पूर्णतः मुक्त रखा जाना चाहिए; (ii) आयोग का सम्बन्ध प्रशासन की दो महत्वपूर्ण समस्याओं से होना चाहिए—प्रथम, भ्रष्टाचार की रोकथाम और लोक सेवाओं में प्रामाणिकता को बनाए रखना; द्वितीय, यह देखना कि विभिन्न अधिकारियों को जिन नियमों के अन्तर्गत प्रशासनिक अधिकार दिए गए हैं उनका न्यायोचित और उचित रूप से पालन किया जा रहा है अथवा नहीं। (iii) सतर्कता आयोग में तीन निदेशालय होने चाहिए। प्रथम निदेशालय नागरिकों की साधारण शिकायतों पर विचार करे; द्वितीय निदेशालय सतर्कता सम्बन्धी विषयों पर और तृतीय निदेशालय केन्द्रीय पुलिस सेवा का कार्य करे।

9. **प्रशासनिक सुधार आयोग**, 1966—उपर्युक्त विभिन्न समितियों के अतिरिक्त भारत सरकार ने पांच वेतन आयोगों की नियुक्ति क्रमशः सन् 1958, 1964, 1973, 1983 तथा 1994 में की। योजना आयोग भी विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं के प्रलेखों में प्रशासनिक सुधार के लिए समय-समय पर महत्वपूर्ण सुझाव देता रहा। संसद की प्राक्कलन समिति ने भी यथासमय प्रशासनिक परिवर्तनों के सुधार प्रतिमान प्रस्तुत किए हैं।

वस्तुतः इन सभी प्रशासनिक सुधार के प्रयत्नों की अपनी सीमाएं रही हैं। ये सुधार असमन्वित, विशृंखलित, अपूर्ण एवं सीमित क्षेत्र को प्रभावित करने वाले होने के कारण प्रशासनिक सुधारों की समग्रता को नहीं छू सके। इन प्रयत्नों ने समस्त भारतीय प्रशासन को एक ऐसे तन्त्र के रूप में नहीं देखा जिसके सभी अंग पारस्परिक अन्तर-सम्बन्धों से जुड़े हैं। एक अंग का आंशिक सुधार अन्य अंगों के सुधार के अभाव में प्रभावहीन एवं निरर्थक रहा है। के. हनुमन्तैया ने इसी तथ्य को दृष्टि में रखते हुए कहा है कि "पिछले बीस वर्षों में भारतीय प्रशासन में न्यूनाधिक परिवर्तन अवश्य हुए हैं, सुधार नहीं।" इसी पृष्ठभूमि में एक शक्तिशाली एवं व्यापक कार्यक्षेत्र वाले प्रशासनिक सुधार आयोग की मांग उठी जिसे सरकार को स्वीकार करना पड़ा।

5 जनवरी, 1966 को भारत सरकार द्वारा भारतीय प्रशासनिक सुधार आयोग की नियुक्ति का आदेश प्रकाशित किया गया। इस आयोग को देश की प्रशासनिक व्यवस्था का परीक्षण करने का कार्य सौंपा गया। श्री मोरारजी देसाई आयोग के अध्यक्ष नियुक्त किए गए। श्री मोरारजी देसाई के संघीय मन्त्रिपरिषद् में सम्मिलित होने पर श्री के. हनुमन्तैया को आयोग का अध्यक्ष नियुक्त किया गया।

प्रशासनिक सुधार आयोग को ऐसे उपायों तथा साधनों पर विचार करने के लिए कहा गया जिसके द्वारा लोक सेवकों में कार्यकुशलता और निष्ठा के उच्चतम स्तर प्राप्त किये जा सकें और लोक प्रशासन को ऐसा उपयोगी यन्त्र बनाया जा सके जिसके माध्यम से सरकार की आर्थिक और सामाजिक नीतियों को क्रियान्वित करके विकास के आर्थिक और सामाजिक उद्देश्यों और लक्ष्यों को पूरा किया जा सके।

प्रशासनिक सुधार आयोग को निम्नलिखित बातों पर विशेष रूप से विचार करने के लिए निदेश दिए गए : भारत सरकार का प्रशासनिक संगठन तथा उसकी कार्य करने की पद्धति, प्रत्येक स्तर पर योजना का संगठन, केन्द्र-राज्य सम्बन्ध, वित्तीय प्रशासन, कार्मिक प्रशासन, आर्थिक प्रशासन, राज्य स्तर पर प्रशासन, कृषि प्रशासन, जिला प्रशासन और नागरिकों की परिवेदना के निवारण की समस्या, इत्यादि। स्पष्ट है कि आयोग का क्षेत्राधिकार काफी व्यापक था। यहां यह उल्लेखनीय है कि रेल, प्रतिरक्षा, परराष्ट्र तथा सुरक्षा और गुप्तचर प्रशासन को आयोग की व्यापक जांच की सीमा से बाहर रखा गया।

सुधार आयोग ने सौंपे गए उत्तरदायित्वों को पूरा करने की दृष्टि से 20 अध्ययन दल, 13 कार्यकारी समूह तथा 1 कृतिक दल की स्थापना की। इन अध्ययन दलों में लगभग 210 प्रतिभाशाली व्यक्तियों ने कार्य किया, जिन्हें जीवन के विभिन्न क्षेत्रों से लिया गया था। इनमें संघीय मन्त्री, मुख्यमन्त्री, महान्यायवादी, रिजर्व बैंक के गवर्नर, विश्वविद्यालयों के उपकुलपति और प्रोफेसर, आदि सम्मिलित थे। आयोग के कार्य में 66 लाख से अधिक रुपए खर्च हुए। आयोग ने अपना प्रथम प्रतिवेदन 'नागरिकों की परिवेदना को दूर करने की समस्या'—20 अक्टूबर, सन् 1966 को तथा अन्तिम प्रतिवेदन—'वैज्ञानिक विभाग'—30 जून, सन् 1970 को प्रस्तुत किया। सुधार आयोग ने प्रशासन को दोषरहित बनाने के लिए कुल 578 सुझाव प्रस्तुत किए। इनमें 51 राज्य सरकारों से, 519 केन्द्रीय सरकार से और 8 केन्द्रीय और राज्य सरकारों से सम्बन्धित थे।

प्रशासनिक सुधार आयोग की प्रमुख सिफारिशें

1. **जन अभियोग निराकरण की समस्याएं**—प्रशासनिक सुधार आयोग का इस सम्बन्ध में यह मत था कि लोक प्रशासकों के विरुद्ध जनता के अभियोगों के निराकरण के लिए दो संस्थाओं की रचना होनी चाहिए। केन्द्र व राज्यों के मन्त्रियों व सचिव स्तर के लोक सेवकों के विरुद्ध अभियोगों की जांच के लिए लोकपाल नाम से एक अखिल भारतीय अधिकारी नियुक्त किया जाए। सचिव स्तर से नीचे के लिए केन्द्रीय सरकार तथा प्रत्येक राज्य सरकार में एक-एक लोकआयुक्त नामक अधिकारी हो। आयोग ने यह सिफारिश की कि लोकपाल का स्तर, शक्तियां एवं सेवा की शर्तें भारत के मुख्य न्यायाधीश तथा लोकआयुक्तों की राज्यों के न्यायाधीशों के समान हों।

2. **भारत सरकार का प्रशासनिक यन्त्र**—मन्त्रिपरिषद् का आकार आवश्यकता के आधार पर निर्धारित किया जाए तथा मन्त्रियों के विभागों के वितरण में मन्त्रालयों का विवेकसम्मत समायोजन किया जाए। मन्त्रिमण्डल सचिवालय के सचिव की भूमिका प्रधानमन्त्री, मन्त्रिमण्डल एवं मन्त्रिमण्डल समितियों के मुख्यों, परामर्शदाता एवं समन्वयकर्ता की होनी चाहिए। प्रधानमन्त्री के अन्तर्गत कार्मिकों के सम्बन्ध में नीति निर्माण आदि कार्यों के सम्पादन हेतु कार्मिक विभाग की स्थापना की जानी चाहिए।

3. **नियोजन तन्त्र**—आयोग का मत था कि प्रधानमन्त्री को योजना आयोग का अध्यक्ष नहीं बनाया जाना चाहिए, किन्तु उसके कार्यों से प्रधानमन्त्री का निकट सम्पर्क आवश्यक है। वित्त मन्त्री भी योजना आयोग का सदस्य नहीं होगा। योजना आयोग में अन्य किसी मन्त्री को भी सदस्य नहीं बनाया जाएगा। योजना आयोग के सदस्यों की संख्या 7 से अधिक नहीं होनी चाहिए। इनका चयन अनुभव एवं विशेषज्ञता के आधार पर किया जाना चाहिए। योजना आयोग के सदस्यों को राज्य मन्त्री और अध्यक्ष का केबिनेट मन्त्री का स्तर प्रदान किया जाना चाहिए।

4. **केन्द्र-राज्य सम्बन्ध**—'संविधान के अनुच्छेद 263 के तहत् अन्तर्राज्यीय परिषद् की स्थापना की जानी चाहिए। इस परिषद् का अध्यक्ष प्रधानमन्त्री हो तथा वित्त-मन्त्री, गृह मन्त्री, विरोधी दल का नेता तथा प्रत्येक क्षेत्रीय परिषद् का एक-एक प्रतिनिधि भी इसके सदस्य होने चाहिए।

5. **कार्मिक प्रशासन**—सरकारी कर्मचारियों को किसी प्रकार की हड़ताल का अधिकार नहीं होना चाहिए। उनकी शिकायतों को संयुक्त विचार-विमर्श परिषद् और नागरिक सेवक न्यायाधिकरण के माध्यम से ही हल किया जाना चाहिए।

6. **वित्त, लेखा और लेखा परीक्षा**—विकास कार्यों से सम्बन्धित विभागों को निष्पादन बजट पद्धति अपनानी चाहिए, लेखा परीक्षा का दृष्टिकोण सकारात्मक और रचनात्मक होना चाहिए, प्रचलित आन्तरिक वित्त के परामर्श की पद्धति को दृढ़ बनाया जाना चाहिए ताकि मन्त्रालयों अथवा विभागों की वित्तीय क्षमता में विकास हो सके, वित्त वर्ष का प्रारम्भ पहली नवम्बर से होना चाहिए।

7. **लोक उपक्रम**—सरकारी अधिकारियों को अस्थायी रूप से लोक उपक्रमों में भेजने की प्रथा समाप्त की जानी चाहिए, मुख्य क्षेत्रों के लोक उपक्रमों के लिए क्षेत्रक निगम प्रणाली स्थापित की जानी चाहिए, लोक उपक्रम के ब्यूरो का पुनर्गठन किया जाना चाहिए, लोक उपक्रमों के विशिष्ट समूहों के लिए लेखा परीक्षा मण्डल स्थापित किए जाने चाहिए।

8. **राज्यपाल की भूमिका**—राज्यपाल उस व्यक्ति को बनाया जाए जिसे प्रशासन तथा सार्वजनिक जीवन का दीर्घ अनुभव हो। कार्यकाल समाप्त होने पर उसे पुनर्नियुक्त न किया जाए। अवकाश प्राप्त न्यायाधीशों को इस पद के लिए उपयुक्त न समझा जाए।

प्रशासनिक सुधार आयोग ने इस परम्परा का अनुमोदन किया कि राज्यपाल की नियुक्ति से पूर्व उस राज्य के मुख्यमन्त्री को विश्वास में लिया जाये। मन्त्रिमण्डल में विधानसभा का बहुमत है या नहीं, इसके निर्णय के लिए राज्यपाल विधानसभा का विशेष अधिवेशन आमन्त्रित कर सकता है।

9. **कार्मिक प्रशासन पर प्रतिवेदन**—कार्मिक प्रशासन पर प्रशासनिक सुधार आयोग ने अपनी रिपोर्ट अप्रैल 1969 में प्रस्तुत की। इस प्रतिवेदन के सम्बन्ध में स्वयं हनुमन्तैया ने कहा था कि यह अधिकतम महत्वपूर्ण प्रलेखों में से एक है (one of the most important documents)। आयोग का विचार था कि सरकार के

कार्य बढ़ गये हैं और सेवाओं का गठन कार्यात्मक (Functional) आधार पर किया जाए। इस दृष्टि से सेवाओं को आठ भागों में विभाजित किया गया : (1) आर्थिक प्रशासन, (2) औद्योगिक प्रशासन, (3) कृषि एवं ग्रामीण विकास प्रशासन, (4) सामाजिक एवं शैक्षणिक प्रशासन, (5) कार्मिक समस्या अथवा प्रशासन, (6) वित्तीय प्रशासन, (7) प्रतिरक्षा प्रशासन तथा आन्तरिक सुरक्षा, (8) नियोजन।

आयोग ने उपर्युक्त प्रकार की आठ अखिल भारतीय सेवाओं की सिफारिश की और इन पदों पर कर्मचारी प्रथम श्रेणी में से लिए जाएं। यदि किसी प्रथम श्रेणी के कर्मचारी ने कार्यात्मक क्षेत्र में 4 से लेकर 12 वर्ष तक काम किया हो तो उसे पदोन्नत करके इन पदों के प्रतिकूल नियुक्त कर देना चाहिए। कार्यात्मक क्षेत्र में वरिष्ठ पदों पर उसी कार्यात्मक सेवा के व्यक्तियों को लिया जाए। आई. ए. एस. के प्रशिक्षणार्थियों के लिए घुड़सवारी हटायी जाए तथा उन्हें मोटर एवं जीप चलाने का व्यापक प्रशिक्षण प्रदान किया जाए।

10. **राज्यस्तरीय प्रशासन**—राज्य में राष्ट्रपति शासन के समय संघ सरकार द्वारा अधिक हस्तक्षेप नहीं किया जाना चाहिए तथा राज्यपाल एवं उसके परामर्शदाताओं को उनकी इच्छानुसार शासन चलाने देना चाहिए। राज्य में विभागों की संख्या 13 से अधिक नहीं होनी चाहिए। प्रत्येक राज्य में एक नये विभाग—कार्मिक विभाग—की स्थापना की जानी चाहिए। राज्य में लोकपाल की नियुक्ति की जानी चाहिए।

11. **जिला प्रशासन**—जिला प्रशासन को दो भागों में विभाजित किया जाए—नियामकीय तथा विकासात्मक। पहले का अध्यक्ष जिला कलक्टर होना चाहिए। एक वरिष्ठ अधिकारी को जिले का विकास अधिकारी नियुक्त किया जाए जो कि जिला परिषद् का अधिशासी पदाधिकारी हो।

प्रशासनिक सुधार आयोग की सिफारिशों का क्रियान्वयन

प्रशासनिक सुधार आयोग की सारी सिफारिशें सरकार ने स्वीकार नहीं की हैं। फिर भी उनमें से कुछ सिफारिशों को क्रियान्वित किया गया है। जैसे—सरकार ने लोकपाल और लोकआयुक्त के सम्बन्ध में आयोग की सिफारिश को मान लिया। पदाधिकारियों के सम्बन्ध में पृथक् कार्मिक विभाग स्थापित कर दिया गया है। आयोग की सिफारिश के परिप्रेक्ष्य में ही 1967 में योजना आयोग का पुनर्गठन किया गया। आयोग की सिफारिश के अनुसार ही 1967 में राष्ट्रीय विकास परिषद् का पुनर्गठन किया गया।

आयोग की सिफारिशों को त्वरित गति से क्रियान्वित न करने का प्रमुख कारण नौकरशाही की उदासीनता है। आमतौर से नौकरशाही परिवर्तन नहीं चाहती। विडम्बना यह है कि जब सुधारकों की ही प्रशासनिक सुधारों में पर्याप्त निष्ठा न हो तो कोई भी सुधार कैसे सम्भव बनाया जाए?

द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग का गठन

31 अगस्त, 2005 को केन्द्र सरकार ने प्रशासन को चुस्त-दुरुस्त करने के उद्देश्य से कर्नाटक के पूर्व मुख्यमन्त्री श्री वीरप्पा मोइली की अध्यक्षता में दूसरे प्रशासनिक आयोग का गठन किया है। इस पांच सदस्यीय आयोग के अन्य सदस्य तमिलनाडु के पूर्व मुख्य सचिव वी. रामचन्द्रन, सी.बी.आई के पूर्व निदेशक ए. पी. मुखर्जी, भारतीय प्रवन्धन संस्थान (आई. आई. एम.) अहमदावाद के ए. एच. कारलो, पूर्व राजस्व सचिव विनीता राय तथा राष्ट्रीय सलाहकार परिपद के सदस्य जयप्रकाश नारायण हैं। आई. आई. एम. अहमदावाद के श्री कारलो को आयोग का सदस्य वनाने के पीछे सरकार की योजना प्रशासनिक सेवा को प्रबन्धन की कुशलता से जोड़ने की है। इस आयोग का प्रमुख कार्य मन्त्रालयों और विभागों का पुनर्गठन और उनकी भूमिका को वैश्वीकरण के दौर के अनुरूप वनाना है। आयोग के लिए 13 सूत्री कार्य क्षेत्र निर्धारित किए गए हैं जो निम्नांकित हैं :

1. भारत सरकार का संगठनात्मक ढांचा।
2. शासन आचार-संहिता।
3. कार्मिक प्रशासन को नया रूप देना।
4. वित्तीय प्रवन्धन प्रणालियों को सुदृढ़ करना।
5. राज्य स्तर पर प्रभावी प्रशासन सुनिश्चित करने सम्वन्धी कदम।
6. प्रभावी जिला प्रशासन सुनिश्चित करने सम्वन्धी कदम।

7. स्थानीय स्व-शासन सरकार/पंचायती राज संस्थाएं।
8. सामाजिक पूंजी, ट्रस्ट एवं सहभागितापूर्ण लोक सेवा प्रदान करना।
9. नागरिक-केन्द्रित प्रशासन।
10. इ-गवर्नेंस को बढ़ावा देना।
11. संघीय राज्य व्यवस्था मुद्दे।
12. आपदा प्रबन्धन।
13. लोक व्यवस्था।

इसका उद्देश्य प्रशासनिक ढांचे को सशक्त, किफायती, स्वच्छ, संवेदनशील, वस्तुनिष्ठ और कुशल बनाना है। भ्रष्टाचार उन्मूलन, ईमानदार लोक सेवकों को प्रताड़ित करने, अधिकारियों के स्वतन्त्र तौर पर फैसला लेने के मौकों को सीमित करने, व्यवस्थागत खामियों को दूर करने और भ्रष्ट अधिकारियों को सजा देने की अनिच्छा को दूर करने के लिए प्रशासन में नैतिकता का समावेश करने की बात कही गई है ताकि इन पर पहले ही नियन्त्रण किया जा सके।

चार दशक बाद गठित आयोग को भ्रष्टाचार को जन्म देने वाली प्रक्रियाओं, नियमों, नियमन और कारकों की पहचान करने और इस विपत्ति से लड़ने के उपाय सुझाने की जिम्मेदारी सौंपी गई है।

आयोग राजनेताओं और लोक सेवकों के बीच सम्बन्धों सहित सरकार के विभिन्न अंगों के बीच सम्बन्धों में सुधार और उनके लिए एक आचार संहिता भी तैयार करेगा।

यह लोक सेवा के प्रदर्शन को और बेहतर बनाने के लिए संघीय सम्बन्धों के संचालन की समीक्षा करेगा।

आयोग के कार्य क्षेत्र के दायरे में परियोजना के लिए धन वितरण को बाधा रहित बनाने के लिए शासन के सभी स्तरों पर वित्तीय प्रबन्ध तन्त्र में क्षमता निर्माण करना, आन्तरिक लेखा-प्रणाली को मजबूत बनाने और बाह्य लेखा-जोखा को संस्थागत रूप देना और उनकी आपूर्ति का मूल्यांकन करना भी है।

राज्य और जिला स्तरों पर प्रशासन को सशक्त बनाने के लिए प्रशासन में उपयुक्त बदलाव के सुझाव भी आयोग देगा। सूचना के स्वतन्त्रता के मुद्दे पर आयोग सरकारी गोपनीयता कानून के दायरे में आने वाले वर्गीकृत सरकारी दस्तावेजों की गोपनीयता की समीक्षा करेगा और गैर वर्गीकृत आंकड़ों को लोगों को उपलब्ध कराने और प्रशासनिक पारदर्शिता को बढ़ावा देगा।

आपदा प्रबन्धन के क्षेत्र में यह तीव्र सक्रियता और तैयारियों को बढ़ावा देने के लिए सुझाव देगा। प्रशासनिक सुधार आयोग ने हाल ही में सरकार को 15 रिपोर्टें प्रस्तुत की हैं, इनके शीर्षक हैं; (i) सूचना का अधिकार—सुशासन की प्रमुख कुंजी, (ii) मानव पूंजी को मुक्त करना : अधिकार एवं शासन—एक केस स्टडी, एवं (iii) आपदा प्रबन्धन—निराशा से आशा की ओर, (iv) शासन में नैतिकता, (v) लोक व्यवस्था, (vi) स्थानीय शासन, (vii) विवादों के समाधान हेतु क्षमता निर्माण, (viii) आतंकवाद प्रतिरोध, (ix) सामाजिक पूंजी-साझा भाग्य, (x) कार्मिक प्रशासन का पुनर्परिष्कार, (xi) ई-प्रशासन का फैलाव, (xii) नागरिक केन्द्रित प्रशासन, (xiii) भारत सरकार की संगठनात्मक संरचना, (xiv) वित्तीय प्रबन्ध व्यवस्था का सुदृढ़ीकरण, (xv) राज्य एवं जिला प्रशासन।

निष्कर्ष—भारत में प्रशासनिक सुधार के इतने सारे प्रयासों के बावजूद भी प्रशासन के बुनियादी ढांचे और कार्य करने की प्रक्रियाओं में मूलभूत अन्तर नहीं आ पाया है। स्वतन्त्रता के 63 वर्ष पूरे होने के बाद भी भारत में प्रशासन बदलाव के लिए बेचैन दिखायी देता है। पुरातन अनावश्यक घिसी-पिटी प्रक्रियाओं को बदलना होगा, नौकरशाही की मनोवृत्तियों को बदलकर उसे उद्देश्यपरक बनाना होगा।

निबन्धात्मक प्रश्न

1. प्रथम प्रशासनिक सुधार आयोग की प्रमुख सिफारिशों का विवेचन कीजिए।
2. गोरवाला प्रतिवेदन अथवा पाल एच. एपिलबी प्रतिवेदन में वर्णित प्रमुख सिफारिशों का परीक्षण कीजिए।

लघु उत्तरीय प्रश्न

प्रश्न 1. प्रथम प्रशासनिक सुधार आयोग कब और क्यों नियुक्त किया गया?

उत्तर—5 जनवरी, 1966 को भारत सरकार द्वारा प्रशासनिक सुधार आयोग की नियुक्ति की गई। मोरारजी देसाई आयोग के अध्यक्ष नियुक्त किए गए। आयोग को देश की प्रशासनिक व्यवस्था का परीक्षण करने का कार्य सौंपा गया। आयोग को ऐसे उपायों तथा साधनों पर विचार करने को कहा गया जिसके द्वारा लोक सेवकों में कार्यकुशलता और निष्ठा के उच्चतम स्तर प्राप्त किए जा सकें।

प्रश्न 2. प्रथम प्रशासनिक सुधार आयोग की किन-किन अनुशंसाओं का क्रियान्वयन किया गया है?

उत्तर—आयोग की सभी सिफारिशें सरकार ने स्वीकार नहीं कीं फिर भी, कुछ सिफारिशों को क्रियान्वित किया गया है जैसे कई राज्यों में लोक आयुक्त के पद सृजित किए गए हैं; पृथक् कार्मिक विभाग स्थापित कर दिया गया है; आयोग की सिफारिश के परिप्रेक्ष्य में ही 1967 में योजना आयोग तथा राष्ट्रीय विकास परिषद का पुनर्गठन किया गया। लोकपाल की स्थापना के लिए कई बार विधेयक लाए गए हैं। आयोग की सिफारिशों को त्वरित गति से क्रियान्वित न करने का प्रमुख कारण नौकरशाही की उदासीनता है।

अति लघु उत्तरीय प्रश्न

1. प्रथम प्रशासनिक सुधार आयोग की दो सिफारिशें बताइए।
2. प्रथम प्रशासनिक सुधार आयोग की कब और किसकी अध्यक्षता में नियुक्ति हुई?
3. प्रथम प्रशासनिक सुधार आयोग की किन सिफारिशों का क्रियान्वयन किया जा चुका है?

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. प्रथम प्रशासनिक सुधार आयोग की स्थापना कब की गई :

(अ) 1947 (ब) 1952
(स) 1957 (द) 1966 **(द)**

2. प्रथम प्रशासनिक सुधार आयोग का अध्यक्ष किसे नियुक्त किया गया :

(अ) चरणसिंह (ब) इन्दिरा गांधी
(स) मोरारजी देसाई (द) चन्द्रशेखर। **(स)**

3. प्रथम प्रशासनिक सुधार आयोग की प्रमुख अनुशंसा थी :

(अ) लोकपाल की नियुक्ति (ब) अन्तर्राज्यीय परिषद् की स्थापना
(स) निष्पादन बजट पद्धति (द) इनमें से सभी। **(द)**

4. लोकसेवाओं का कार्यात्मक विशेषीकरण के आधार पर गठन करने का सुझाव किसका था :

(अ) सरकारिया आयोग (ब) प्रथम प्रशासनिक सुधार आयोग
(स) अशोक मेहता समिति (द) वलवंत राय मेहता समिति। **(ब)**

5. प्रथम प्रशासनिक सुधार आयोग की अनुशंसा थी :

(अ) योजना आयोग के सदस्यों की संख्या 7 से अधिक नहीं होनी चाहिए
(ब) योजना आयोग के सदस्य विशेषज्ञ होने चाहिए
(स) आयोग के सदस्यों को राज्य मन्त्री का दर्जा देना चाहिए
(द) उपर्युक्त सभी। **(द)**